ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2016; 2(3): 820-821
www.allresearchjournal.com
Received: 17-01-2016
Accepted: 20-02-2016

ममता तिवारी
गवेशिका स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, ल०ना०मि०वि वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
ममता तिवारी
गवेशिका स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, ल०ना०मि०वि वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

जीवन में धर्म का महत्त्व

ममता तिवारी

सारांशः
अपने शरीर और जीवन को बचाना सभी प्राणियों का स्वाभाविक धर्म है...यदि किसी जीव से मानवो को खतरा लगता है तो मानव अपने आप को किसी दूसरे तरीके से बचाने की कोशिश भी करता है। सभ्य मानव दूसरो को भी जीने देते है, दूसरो के लिये विचार तथा कर्म करना ही सभ्य मानव स्वभाव का मूलमंत्र है।

प्रस्तावना
धर्म की योजना का अधिदैविक मूल प्राकृतिक या दैवी विधानों में मिलता है। जिस देव ने इस विश्व की रचना की है अथवा जिससे विश्व का प्रादुर्भाव माना जाता है, वह ऐसी विधानों की अपेक्षा रखता है जिससे विश्व की स्थिति बनी रहे। सृष्टि–रचयिता के लिए दैव, मानव, पशु–पक्षी, वृक्ष–लता, नदी–समुद्र, सूर्य–तारे आदि सबकी स्थिति रक्षणीय है। उसने इस प्रयोजन से प्राकृतिक विधान बनाया है, जिसे ऋतु कहते हैं। ऋतु प्राकृतिक धर्म है, जिसे आदिवैदिक धर्म भी कहा जा सकता है। मानव भी प्रकृति का अंग है। वह इस आदि दैविक ऋतु–धर्म को मानने के लिए बाध्य है। विश्व में किसी का धर्म एकांउटी नहीं हो सकती है। किसी एक का धर्म ऐसा नहीं होना चाहिए, जो सबकी प्रतिष्ठा के लिए न हो। विश्व के देव–दानव, पशु–पक्षी और सूर्य–तारे सबका कल्याण होना चाहिए, यही धर्म के विषय में भारत का शाश्वत दृष्टिकोण है। 'मनु' के अनुसार वह धर्म त्याज्य है, जिससे लोगों को कष्ट हो। [1] महाभारत में कहा गया है कि–

''सर्व तीर्थेषु वा स्नानं सर्वभूतेषु चावर्जवम्।
उभा त्वेते समे स्थाताभार्जवं वा विशिष्यते।।'' [2]

धर्म के कुछ मौलिक अंगों की विशेषताओं का परिचय वांछनीय है। इनमें एक या अनेक को लेकर धर्म की परिभाषा बनाई गई है। कणाद के अनुसार ''यतोभ्युदय निःश्रेय सिद्धिः सा धर्मः'' अर्थात् धर्म वह जिसके द्वारा अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति हो। [3] निःसंदेह धर्म अभ्युदय और निःश्रेयस का साधक है।
मनु ने धर्म की शाश्वत परिभाषा बतलाई है, यथा–

''धृतिः क्षमा दमोस्तेयं शौचमिमिंद्रयनिग्रहः
धीर्विद्या सत्यकक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।। [4]

धर्म की उपयोगिता बताते हुए मनु ने कहा है कि धर्म एक मात्र मित्र है, जो मरने के पश्चात् भी साथ जाता है, यथा–

''एक एव सुहृद धर्मोनिधनेप्यनुयातियः। [5]

महाभारत की परिभाषा में कहा गया है–

''एष धर्मों महायोगे दानं भूतदया तथा
ब्रह्मचर्य तथा सत्यमनक्रोशो धृतिः क्षमा।
सनातनस्य धर्मस्य मूलमेतत्सनातनम्।। [6]

अर्थात् दान, ब्रह्मचर्य, दया, सत्य, अनुक्रोश, धृति और क्षमा सनातन धर्म के सनातन मूल है।

महाभारत में धर्म की व्युत्पत्ति बतलाई है कि–''धारणाद्धर्ममित्याहु, धर्म धार्वते प्रजाः। [क] अर्थात् धारण करने की योग्यता होने से धर्म शब्द सार्थक है। धर्म समाज को धारण करता है। सभी प्राणियों के प्रति मन में कल्याण–भावना मानसिक धर्म है। [ख] महाभारत में आत्मसम्पत्तियों को धर्म का मूल माना गया। ये सम्पत्तियाँ हैं–बहुश्रुत होना, तप, त्याग, श्रद्धा, यज्ञ, क्रिया, क्षमा, भाव, शुद्धि, दया, सत्य और संयम। [ख][9] प्रायः इन्हीं के समकक्ष विधान यज्ञ, अध्ययन, दान और ताप से पितृभाव तथा सत्य, क्षमा दम और अलोभ से देवयान का पथिक बन जाने की योजना महाभारत में प्रस्तुत की गई है। [10]

पौराणिक युग में भी मानवता के सर्वश्रेष्ठ गुणों को धर्म का आवश्यक अंग माना गया। भागवत् के अनुसार विद्या, दान, तप और सत्य धर्म के चार पद हैं–अर्थात् धर्म इन्हीं के अनुरूप हो सकता है। [ख][11] वायुपुराण के अनुसार कुशलता और अकुशलता संपादित करने वाले कर्म ही धर्म या अधर्म हैं। अधर्म वही है जिसे धर्म करने से महत्त्व की प्राप्ति नहीं होती है और जो धारण करने के योग्य नहीं है। [ख][12] धर्म की प्रायः परिभाषा जैन महापुराण में भी मिलती है, जिसके अनुसार वेद, पुराण, स्मृति, चरित्र, क्रिया, विधि, मंत्र, देवता–लिंग, आहार आदि ही शुद्धि का जो विवेचन ऋषियों ने किया है, वह धर्म है। [13]

अशोक ने सभी धर्मों के अनुरूप जो परिभाषा धर्म के लिए नियत की, उसके अनुसार पाप से दूर रहना, अच्छे काम करना, दया, दान, सत्य और पवित्रता का व्रत लेना धर्म है। [ख][14]

पूर्व मध्य काल में बिहार में उपर्युक्त भारतीय धर्म की परिधि में ही जीवन के सभी पक्षों और प्रवृत्तियों का विवेचन किया गया। बिहार में तीनों प्रमुख धर्म–हिन्दू, बौद्ध और जैन फलते–फूलते रहे और इस काल में तीनों धर्मों के अनुयायी और धर्मप्रचारक बिहार में अपने धर्म के प्रभाव–विस्तार में लगे रहे और एतदर्थ आपस में संघर्ष भी करते रहे। संघर्ष में एक–दूसरे धर्म को बल–प्रयोग द्वारा समाप्त करने का प्रयास नहीं किया गया, बल्कि समन्वय की प्रवृत्ति अधिक देखी गई।

बिहार वासियों का जीवन प्राचीनकाल में ही धर्मगत उत्कंठा से अनुप्रमाणित रहा है जिसमें नैतिक मूल्यों, आचारगत अभिव्यक्ति तथा देवताओं और ईश्वर के प्रति समर्पण की भावना का समावेश था। सम्पूर्ण समाज अतिप्राचीनकाल से ही धर्म की शीतल छाया में क्रियाशील रहा। वैदिक धर्म की प्रधानता के कारण ही बौद्ध धर्म और जैन धर्म के प्रवर्त्तकों के प्रादुर्भाव का गौरव बिहार को प्राप्त हुआ। इस प्रकार बिहार ही नहीं पूरे विश्व के जन–मानस के लिए धर्म का अत्याधिक महत्त्व रहा है।

निष्कर्षः

जीवन में धर्म का यही महत्त्व है कि स्वयं जीना पशुता है और दूसरो को भी जीने देना मानव धर्म है। जीने देना और जानवरो की तरह जीते रहना वैचारिक तथा व्यवहारिक दृष्टि से एक दूसरे से भिन्न क्रियाएँ है। जानवर अपनी मनोवृति से ही एक दूसरे के साथ जीते रहते है और जैसे ही किसी निजी स्वार्थ के कारण उन्हें आवश्यकता पड़ती है तो वह अपने साथ रहने वाले जीव को मार के खा भी लेते हैं। धर्म परायण धर्मावलम्बीयों ने दूसरो को भी जीने दो का लक्ष्य रख कर स्वेच्छा से कुछ नियम और प्रतिबन्ध अपने तथा सभ्य समाज के ऊपर लागु कर दिए है।

स्रोत एवं संदर्भः

1. मनुस्मृति–4/176
2. महाभारत उद्योग–35/2
3. कणादसूत्र–1/12
4. मनुस्मृति–6/92
5. मनुस्मृति–2/92
6. महाभारत अश्वमोधिक–94/31
7. महाभारत कर्णपर्व–49/50
8. महाभारत शांतिपर्व–182/30
9. महाभारत–161/5–6
10. महाभारत वनपर्व–71–73
11. भागवत–3/12/41
12. वायुपुराण–59वाँ अध्याय
13. महापुराण–30/20–21
14. अशोक का द्वितीय स्तम्भ लेख।